|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 11: विश्वरूपदर्शनयोग

1/4 (श्लोक 1-11), शनिवार, 18 जनवरी 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/8jNiX7d0zIc

परमात्मा के दिव्य अलौकिक दर्शन

सुमधुर प्रार्थना, दीप प्रज्वलन, माँ सरस्वती, भगवान वेदव्यासजी, ज्ञानेश्वर महाराज तथा सद्गुरु स्वामी गोविन्ददेव गिरिजी महाराज के चरणों में कोटि-कोटि वन्दना करते हुए आज के विवेचन सत्र का आरम्भ हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता वह अनुपमेय गीत है जो श्रीभगवान् के मुखारविन्द से प्रत्यक्ष समराङ्गण में किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर करने के लिए गाया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता रूपी इस सुन्दर, अमृतमय तथा ज्ञानमय गीत को गाते हुए हम इस अध्याय तक पहुँच गये हैं। इस अध्याय का नाम **"विश्वरूपदर्शन योग"** है।

वास्तव में इस अध्याय का विवेचन दसवें अध्याय के उपरान्त होना उचित था, किन्तु हमने पहले तेरहवें अध्याय का विवेचन देखा। तेरहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने बहुत सुन्दर वर्णन किया कि किस प्रकार निर्गुण परमात्मा चराचर में हैं? किन्तु उसके पहले ही श्रीभगवान् ने अर्जुन के विनयपूर्वक निवेदन करने पर अर्जुन को विश्वरूपदर्शन दिया है। हमारी भक्ति तब तक चरम अवस्था तक नहीं पहुँचेगी, जब तक हम समग्रता से इस सृष्टि के समस्त रहस्य नहीं समझेंगे। जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि सृष्टिकर्ता कौन हैं? सृष्टिकर्ता कैसे हैं? ये कण-कण में किस प्रकार विद्यमान हैं और कण-कण में विद्यमान होते हुए भी वे मेरे अन्दर कैसे हैं? उनका और मेरा सम्बन्ध क्या है? जीव, जगत और जगदीश्वर- इन तीनों का परस्पर क्या सम्बन्ध है? जब तक यह गुत्थी नहीं सुलझेगी, तब तक हमारा यह मानव जन्म भी अधूरा है। सभी मनुष्यों के मन में यह प्यास निरन्तर बनी हुई है। सबके मार्ग पृथक हो सकते हैं किन्तु यह प्यास सभी के मन में लगी है। यह अपूर्णता की प्यास है और इस अपूर्णता को पूर्णता की ओर ले जाने और उस पूर्णत्त्व के साथ एकाकार होने का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह जीव छटपटा रहा है।

अर्जुन समराङ्गण में हैं और उनके सारथी सगुण, साकार, परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण के रूप में उनके घोड़ों की लगाम अपने हाथ में लिए हुये वहाँ उपस्थित हैं, किन्तु फिर भी अर्जुन के मन में भ्रम की स्थिति बनी हुई है। अर्जुन के मन के इस संशय और अज्ञान को दूर करने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता है और अर्जुन को निमित्त मात्र बना कर विश्व के समस्त मानवों के लिए प्रमुख धर्म भी श्रीमद्भगवद्गीता ही है।

नवम् अध्याय में हमने देखा कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को पहले सारे रहस्य बताये, तदुपरान्त अर्जुन को वे रहस्य ग्रहण करने की क्षमता न होने के कारण श्रीभगवान् ने विभूतियों में उस परमात्मा को देखना या जहाँ-जहाँ परमात्मा विशेष रूप में प्रस्फुटित होते हैं, उनकी अनुभूति करने के विषय में बताया।

जिस प्रकार महाकुम्भ पर्व एक विशिष्ट नक्षत्र में लगता है, प्रयागराज में गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती के त्रिवेणी सङ्गम पर उसकी विशेष

अनुभूति होती है। श्रीभगवान् ने दसवें अध्याय में ऐसे सभी विशिष्ट स्थान बता दिये जहाँ हम ऐसी विभूतियों के साथ एकाकार हो सकते हैं।

फिर भी श्रीभगवान् ने अर्जुन को समझाया-

"अर्जुन! तुम यह मत समझना कि मैं केवल इन्हीं विभूतियों में हूँ। मेरी योगशक्ति द्वारा मैंने अपने एक अंश में इस सम्पूर्ण विश्व को धारण किया है।" श्रीभगवान् के एक अंश में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं। अर्जुन के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि ऐसे परमात्मा कैसे होंगे? अब अर्जुन को लग रहा है कि श्रीभगवान् मुझे थोड़ा-थोड़ा ज्ञान दे रहे हैं लेकिन अब थोड़े-थोड़े में रुकना मेरे लिए सम्भव नहीं हो पा रहा है। जिस प्रकार हम विवेचन में डूबते हैं और श्रीमद्भगवद्गीता के अर्थ की गहराई में जाने लगते हैं। फिर हमें लगता है कि हम और गहराई तक जाएँ, हमें और अधिक समझ में आये तथा हम उस परमात्मा के साथ एक निःशङ्क मन से जुड़ जाएँ और भक्ति का प्रवाह दोनों ओर से बहता रहे, इसलिए जिस प्रकार हम श्रीमद्भगवद्गीता का आधार लेकर ये सारे रहस्य जानने का प्रयास कर रहे हैं, उसी विश्वरूप का दर्शन श्रीभगवान् इस अध्याय में अर्जुन को देने वाले हैं। "सम्पूर्ण विश्व इस परमात्मा में कैसे समाहित है?" विश्व के किसी भी धर्मग्रन्थ में इस प्रकार समग्रता से इसका वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता, इसलिए यह अध्याय महत्त्वपूर्ण है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि पहले ऐसा लगता है कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को कुछ भ्रमित कर दिया है, किन्तु बाद में हमें समझ में आता है कि यह समाधि योग का अध्याय है। जब तक यह अध्याय हमारे चिन्तन की गहराई तक नहीं पहुँचता, तब तक कण-कण में विद्यमान उस परमात्मा को भी हम नहीं समझ सकते।

दसवाँ अध्याय हमें मङ्गलता में मङ्गलता का दर्शन करना सिखाता है। जैसे यदि हम महाकुम्भ में जाएँगे और वहाँ की गन्दगी ही देखेंगे तो इसका अर्थ है कि हमने मङ्गलता में अमङ्गलता देखी। हमें मङ्गलता में मङ्गलता देखने की दृष्टि, मङ्गलता में परमात्मा देखने की दृष्टि दसवें अध्याय से प्राप्त होती है। दसवाँ अध्याय हमें सिखाता है कि जहाँ भी कुछ विशेषता है, वह परमात्मा की विशेषता है। यह सत्य है कि विशेषता में परमात्मा हैं, किन्तु जहाँ विशेषता नहीं है, वहाँ भी परमात्मा हैं, जहाँ अमङ्गलता है, वहाँ भी परमात्मा हैं। वे उस अमङ्गलता में मङ्गलता के कारण ढँक गये हैं। यह समझने की दृष्टि ग्यारहवाँ अध्याय प्रदान करता है।

11.1

अर्जुन उवाच
मदनुग्रहाय परमं(ङ्), गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं(म्) वचस्तेन, मोहोऽयं(म्) विगतो मम॥11.1॥

अर्जुन बोले - केवल मेरे पर कृपा करने के लिये ही आपने जो परम गोपनीय अध्यात्म - विषयक वचन कहे, उससे मेरा यह मोह नष्ट हो गया है।

विवेचन- अर्जुन अत्यन्त व्याकुलता से श्रीभगवान् से कहते हैं, "श्रीभगवान् आप कह रहे हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपके एक अंश में स्थित है। जिस प्रकार बहुत गहरे हिमखण्ड का केवल ऊपरी सिरा दिखता है, उसी प्रकार आप इतने विशाल हैं! आपने मुझ पर बहुत कृपा कर दी कि मेरा मोह चला गया। मैं स्वयं को योद्धा मान रहा था। मैं स्वयं को पाण्डव मान रहा था। मैं कौरवों को अपना शत्रु मान रहा था। मैं आपको अपना सखा और सारथी समझ रहा था। मेरी इस दृष्टि को आपने विकसित किया है कि आप इसके भी परे हैं। आपने मेरा दृष्टिकोण बदल दिया है। आपने मेरे चर्मचक्षु की दृष्टि को ज्ञानचक्षु में परिवर्तित करना प्रारम्भ कर दिया है।"

अर्जुन बहुत व्याकुलता से श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं कि "आपने मुझ पर अनुग्रह किया है। श्रीभगवान्! मुझ पर अनुग्रह करने के लिए आपने अपने मुखारविन्द से अध्यात्म के जो समस्त रहस्य कहे, उससे मेरा सारा मोह चला गया है।"

अध्यात्म शब्द का अर्थ होता है "**अधि+आत्म**" अर्थात् स्वयं में झाँकना। अपने अन्दर जाकर अपने उस स्वरूप तक पहुँचना अध्यात्म कहलाता है। अर्जुन कहते हैं कि "अभी तक मैं स्वयं को देह समझ रहा था, इस कारण इन्हें अपने सगे-सम्बन्धी समझ रहा था। मैं समझ रहा था कि द्रोणाचार्य मेरे आचार्य हैं, जिन्होंने मुझे धनुर्विद्या सिखायी। पितामह भीष्म हैं, जिनकी गोद में, मैं बड़ा हुआ। मैं अभी तक केन्द्र में था, आपने केन्द्र बदल दिया। अब मुझे यह समझ में आ गया कि यह समस्त विश्व आपका है। आप केन्द्र बिन्दु हैं। केवल देह धारण करने के कारण इस जन्म में यह मेरा परिवार है, यह समझने के बाद मेरा मोह चला गया। अभी तक मैं गलत सोच रहा

था। आपने मेरा दृष्टिकोण व्यापक कर दिया है।"

अर्जुन फिर कहते हैं कि "श्रीभगवान् मेरा मोह तो चला गया किन्तु अब एक प्यास उत्पन्न हो गयी है"। कहा जाता है कि इस अध्याय के पठन के बाद मनुष्य का भय चला जाता है। इस अध्याय को पढ़ने के बाद हमें अमङ्गलता से घृणा नहीं करनी है, क्योंकि यदि हम यह कहें कि मङ्गलता ही परमात्मा हैं तो फिर अमङ्गलता क्या है? इससे एक के साथ हमारी आसक्ति होगी और दूसरे के साथ हमारा द्वेष होगा और हम राग-द्वेष के परे कभी जाएँगे ही नहीं, इसलिए यदि इस अध्याय को समझना है तो हमें इसके चिन्तन के साथ ही समझना होगा कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को यह विश्वरूप दर्शन क्यों दिया है? जो अन्यत्र किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है?

श्रीमद्भगवद्गीता की विशेषता यह ग्यारहवाँ अध्याय और श्रीभगवान् का विश्वरूप दर्शन है। जिस प्रकार प्रयागराज में त्रिवेणी सङ्गम में सरस्वती नदी गुप्त है। यह ऊपर से दिखती नहीं है और वहीं उसका सङ्गम हो जाता है।

ज्ञानेश्वर महाराज ने प्रयागराज की उपमा इस अध्याय को दी है। वे कहते हैं कि इस अध्याय के चिन्तन से प्रयाग तीर्थ में स्नान करने का समस्त पुण्य प्राप्त होगा।

आतां यावरी एकादशीं । कथा आहे दोन्हीं रसीं ।
येथ पार्था विश्वरूपेंसीं। होईल भेटी ॥

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि ग्यारहवें अध्याय में दो रस बहते हैं। एक शान्त रस और दूसरा अद्‌भुत रस। यहाँ आपको कुछ विस्मयजनक बातें सुनने को मिलेंगी। जिस प्रकार प्रयागराज में गङ्गा और यमुना ऊपर से बहती हैं और सरस्वती गुप्त है, उसी प्रकार यहाँ श्रीभगवान् का समस्त उपदेश अर्थात् ज्ञान का रस गुप्त हो गया। हमें वह उपदेश ढूँढ कर निकालना पड़ेगा जो हमारे जीवन की व्यापकता को एक नया दृष्टिकोण देगा, जिससे हमें भी विश्वरूप दर्शन हो सकता है। हो सकता है कि जैसे दर्शन अर्जुन को प्राप्त हुए, वैसे दर्शन हमें प्राप्त न हों, किन्तु विश्व की ओर देखने की एक नयी दृष्टि श्रीभगवान् हमें इस अध्याय द्वारा प्रदान कर सकते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

मीनले गंगेयमुनेचे ओघ । तैसें रसां जाहलें प्रयाग ।
म्हणौनि सुस्नात होत जग । आघवें एथ ॥

प्रयागराज में गङ्गा और यमुना एक दूसरे से मिलती हैं, किन्तु वहाँ पर एक रस और है। समस्त विश्व वहाँ पर स्नान करता है। वे कहते हैं-

माजीं गीता सरस्वती गुप्त । आणि दोनी रस ते ओघ मूर्त ।
यालागीं त्रिवेणी हे उचित । फावली बापा ॥

यहाँ ज्ञानेश्वर महाराज बहुत सुन्दर बात कहते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार वहाँ सरस्वती नदी गुप्त है, यहाँ पर भी शान्त रस तथा अद्‌भुत रस ऊपर से बहते दिखेंगे किन्तु इन दोनों रसों के अन्दर गीता-सरस्वती बहती है। यह भी एक त्रिवेणी सङ्गम है।

हम सब अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं कि इस त्रिवेणी सङ्गम रूपी ग्यारहवें अध्याय का चिन्तन, विवेचन, इसका शुद्ध उच्चारण और इसे कण्ठस्थ करने का प्रयास हम महाकुम्भ के पर्व में कर रहे हैं। इस अध्याय का चिन्तन ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी के बिना नहीं किया जा सकता। पूज्य गुरुदेव भी ज्ञानेश्वरी के आधार पर ही चिन्तन करते हैं। हम सब भी पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से प्रवाहित ज्ञानधारा के आधार पर ही चिन्तन करते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज अर्जुन के मनोभावों को बहुत सुन्दर रूप से प्रकट करते हैं। वे कहते हैं, "अर्जुन ने कहा कि नियन्ता आप हैं और मैं सोच रहा था कि -

मी जगीं एक अर्जुनु। ऐसा देहीं वाहे अभिमानु।

मैं अर्जुन! मैं धनुर्धारी! ऐसा देहाभिमान लेकर मैं इस समराङ्गण में आया।

आणि कौरवांतें इयां स्वजनु। आपुलें म्हणें॥

कौरवों और पाण्डवों को मैं स्वजन कह रहा था-

'दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्', सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति॥1.28।।

इस प्रकार प्रथम अध्याय में अर्जुन ने कह दिया कि मैं अपने सामने अपने स्वजन देख रहा हूँ। अपने स्वजनों को देख कर अर्जुन की ऐसी अवस्था हुई कि उनकी त्वचा जलने लगी, उनके हाथ से गाण्डीव छूटने लगा। इस अध्याय में अर्जुन कहने लगे कि "अरे! मैं तो गलत सोच रहा था। मैं कह रहा था कि मैं इन्हें मारूँगा तो मुझे पाप लगेगा। आपने मुझे इस दुःस्वप्न से जगाया है। आपने मुझ पर यह अनुग्रह किया है।"

याहीवरी यांतें मी मारीन। म्हणें तेणें पापें कें रिगेन।
ऐसें देखत होतों दुःस्वप्न। तों चेवविला प्रभु॥

अर्जुन ने कहा-

मोहोयं विगतोमम।।

अर्थात् "मेरा मोह चला गया।" अभी तक अर्जुन ने यह नहीं कहा कि मैं अब आपकी आज्ञा का पूरा पालन करूँगा। यह बात अर्जुन ने अन्तिम अध्याय में कही, जब श्रीभगवान् के मुखारविन्द से सम्पूर्ण गीताजी प्रवाहित हुईं।

11.2

भवाप्ययौ हि भूतानां(म्), श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः(ख्) कमलपत्राक्ष, माहात्म्यमपि चाव्ययम्॥11.2॥

क्योंकि हे कमलनयन! सम्पूर्ण प्राणियों के उत्पत्ति तथा विनाश मैंने विस्तारपूर्वक आपसे ही सुने हैं और (आपका) अविनाशी माहात्म्य भी (सुना) है।

विवेचन- अब अर्जुन श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे हैं। अर्जुन के मन में एक शान्तरस बहने लगा है। जिस प्रकार ज्ञानेश्वर महाराज ने कह दिया कि शान्त और अद्भुत - इन दोनों रसों का यहाँ सङ्गम है। यह हमें समझना होगा।

विनोभा भावे जी कहते हैं कि यदि पहले चराचर में कण-कण में परमात्मा को देखने की क्षमता न हो, तो पहले जहाँ पर हमें विशेष रूप से श्रीभगवान् की अनुभूति होती है और हमारा मन शान्त होता है, वहाँ पर परमात्मा को देखने का प्रयास करना और उनकी अनुभूति महसूस करना चाहिए, चाहे वह मन्दिर हो, तीर्थक्षेत्र हो, हिमालय हो या फिर हमारे घर की ठाकुरवाड़ी हो, वहाँ नतमस्तक होना चाहिए तथा वहाँ परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए, किन्तु वहीं पर रुकना नहीं है। फिर चराचर में, कण-कण में परमात्मा देखना चाहिए। जिस प्रकार बालवाड़ी में बच्चों को पहले सरल अक्षर पढ़ाये जाते हैं, तदुपरान्त संयुक्त अक्षर और फिर कठिन अध्याय पढ़ाये जाते हैं, उसी प्रकार दसवाँ अध्याय है। पहले मङ्गलता में मङ्गलता देखने का प्रयास, फिर अमङ्गलता से भी घृणा न करने की क्षमता बढ़ाने का प्रयास, यह ग्यारहवें अध्याय में सिखााया गया है। अब अर्जुन को भी लग रहा है कि "जिन्होंने हमारे साथ दुर्व्यवहार किया, द्रौपदी का चीर-हरण किया, हमने उनके लिए अपने मन में कितने प्रण ठाने, उनके लिए मैं घृणा क्यों करूँ? अपना मन मैला क्यों करूँ? मुझे समग्रता से वह सम्पूर्ण ज्ञान चाहिए", इसलिए अब अर्जुन श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे हैं।

अर्जुन कहते हैं, "जिनके नेत्र (अक्ष) कमल पत्रों के समान अत्यन्त सुन्दर हैं, उन श्रीभगवान् अर्थात् आपसे मैंने समराङ्गण में पञ्च महाभूतों से निर्मित इस सृष्टि और उसकी उत्त्पत्ति की बातें विस्तारपूर्वक सुनीं।" रणवाद्यों के कोलाहल में अर्जुन पूरी एकाग्रता से श्रीभगवान् की वाणी सुन रहे हैं। अर्जुन की श्रवण-क्षमता भी विशेष है। वे पुनः कहते हैं, "आपका कभी नष्ट न होने वाला (अव्यय) महात्म्य भी मैंने सुना।"

यहाँ अर्जुन ने पहली बार श्रीभगवान् के नेत्रों के लिए **कमलपत्राक्ष** के विशेषण का प्रयोग किया है। "जिनके नेत्र कमल के पत्तों के समान दृष्टि का दोष दूर करने वाले व अत्यन्त निर्मल हैं।" अर्जुन कहते हैं, "श्रीभगवान्! आप मेरी दृष्टि का दोष भी दूर कर रहे हैं। मेरी दृष्टि भी सङ्कुचित थी, आप उसे व्यापक बना रहे हैं।" कमल पत्र के ऊपर कीचड़ में भी कोई दाग नहीं ठहरता। कमल निर्मलता का प्रतीक है।

11.3

एवमेतद्यथात्थ त्वम्, आत्मानं(म्) परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपम्, ऐश्वरं(म्) पुरुषोत्तम॥11.3॥

हे पुरुषोत्तम! आप अपने-आपको जैसा कहते हैं, यह (वास्तवमें) ऐसा ही है। हे परमेश्वर! आपके ईश्वर-सम्बन्धी रूपको (मैं) देखना चाहता हूँ

विवेचन- यहाँ अर्जुन ने श्रीभगवान् के लिए दो सम्बोधन प्रयोग किए- एक परमेश्वर और दूसरा पुरुषोत्तम। एक ही श्लोक में अर्जुन श्रीभगवान् को **परमेश्वर अर्थात् नियन्ता** और **पुरुषोत्तम अर्थात् सभी चैतन्यों के चैतन्य** कह रहे हैं। अर्जुन कहते हैं "आप स्वयं के विषय में अभी जो बता रहे हैं, मैं तो आपको अपना सखा मान रहा था। मैंने गोकुल में आपकी लीलाएँ सुनी हैं, किन्तु अब मुझे आपकी इस विशेषता की अनुभूति और अधिक विशेषता के साथ हो रही है। यह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड जिसमें समाया है, मैं आपका वह ऐश्वर्य सम्पन्न रूप देखना चाहता हूँ।" यहाँ अर्जुन श्रीभगवान् से अनुनय कर रहे हैं।

मनुष्य को जब यह समझ में आ जाये कि मेरी सोच गलत है, वह क्षण जीवन में एक बड़ा लक्ष्य होता है। इसके साथ जब हम आगे बढ़ते हैं, तब ज्ञान से हमारे मन की गागर भर जाती है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

"तुझें विश्वरूप आघवें। माझिये दिठीसि गोचर होआवें।
ऐसी थोर आस जीवें। बांधोनि आहें॥

दिठीसि का अर्थ है दिखना। "मुझे आपका विश्वरूप सामने दिख रहा है। मेरे मन में अब यह प्यास जाग गयी है। "अर्जुन सोचते हैं कि श्रीकृष्ण मनुष्य रूप में अखिल ब्रह्माण्ड के नियन्ता हैं जो मुझे उस दिव्य रूप का दर्शन करवा सकते हैं।

यहाँ सम्भवतः श्रीभगवान् के मन में यह भाव आ गया होगा कि यहाँ तो रणवाद्य बज रहे हैं और तुम विश्वरूप के दर्शन की आशा कर रहे हो। मेरी तो तुमसे यह आशा है कि-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।।4.7।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ||4.8।।

मैं तो यहाँ धर्म संस्थापना करने के लिए, सज्जनों का रक्षण करने और दुर्जनों का विनाश करने के लिए आया हूँ। इसके लिए मुझे तुम्हारी आवश्यकता है और तुमने अपना धनुष रख दिया, इसलिए मुझे इस समराङ्गण में यह समस्त उपदेश करना पड़ा। तुम्हारी आशा तो बढ़ती ही जा रही है और तुम अपनी मर्यादा का उल्लङ्घन कर रहे हो।

11.4

मन्यसे यदि तच्छक्यं(म्), मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं(न्), दर्शयात्मानमव्ययम्॥11.4॥

हे प्रभो! मेरे द्वारा (आपका) वह परम ऐश्वर रूप देखा जा सकता है - ऐसा अगर (आप) मानते हैं, तो हे योगेश्वर! आप अपने (उस) अविनाशी स्वरूप को मुझे दिखा दीजिये।

विवेचन- यहाँ अर्जुन श्रीभगवान् से विनय करते हैं कि "यदि सम्भव हो और यदि आपको ऐसा लगता हो कि आपका वह रूप देखने की मेरी क्षमता है, तो हे प्रभु! आपका वह अव्यय रूप देखने की मेरी बहुत अभिलाषा है।"

यहाँ ज्ञानेश्वर महाराज अर्जुन की सोच को कुछ और आगे बढ़ाते हैं, उनके मन में झाँकते हैं तथा और अधिक विस्तार से अर्जुन का मनोभाव हमारे सामने प्रकट करते हैं। अर्जुन कहते हैं कि "हे ईश्वर! अगर क्षमता नहीं है तो आप क्षमता दीजिएगा। आप इतने उदार हैं। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। आपके लिए मेरी क्षमता बढ़ाना कठिन नहीं है। आप तो अपात्र व्यक्ति को भी कुछ भी दे देते हैं। आपने शिशुपाल का वध करके उसे अपने हृदय से लगा लिया। आपने कंस को भी सद्गति दे दी। आपने पूतना का स्तनपान करके उसे मातृत्त्व प्रदान कर दिया। फिर मैं तो आपका सखा, आपका चरणाश्रित हूँ। क्या आप मेरी क्षमता नहीं बढ़ा सकते?

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

तुझें औदार्य जाणों स्वतंत्र । देतां न म्हणसी पात्रापात्र ।

"आप जब दोनों हाथों से देने लगते हैं तो यह भी नहीं देखते कि यह पात्र है कि अपात्र है। यदि मेरी पात्रता कम है तो आप उसे बढ़ा सकते हैं। आप मेरे चर्मचक्षु को आपका विश्वरूप देखने की शक्ति दे सकते हैं।"

अब श्रीभगवान् भी प्रसन्न हो गये। उन्हें लगा कि कोई तो है जो समराङ्गण में यह सब जानना चाहता है। आज मेरा जीवन धन्य हो गया। उन्हें लगा कि अर्जुन का मुझ पर प्रेम अकारण नहीं था, उसकी पात्रता है। अब श्रीभगवान् ने अपना मनुष्यरूप छोड़ दिया और विश्वरूप धारण कर लिया। सम्पूर्ण विश्व उनके विभिन्न अङ्गों में समाहित होने लगा।

11.5

श्रीभगवानुवाच
पश्य मे पार्थ रूपाणि, शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि च॥11.5॥

श्रीभगवान् बोले - हे पृथानन्दन! अब मेरे अनेक तरह के, और अनेक वर्णों (रंगों) तथा आकृतियोंवाले सैकड़ों-हजारों अलौकिक रूपोंको (तू) देख।

विवेचन- श्रीभगवान् अत्यन्त उत्साह से कहने लगे, "हे पार्थ! अब तुम मुझ में सहस्र प्रकार के वर्ण तथा सहस्र आकृति वाला दिव्य तथा अलौकिक रूप देखो।"

पश्य के दो अर्थ होते हैं- एक अर्थ है चर्मचक्षु से देखो और दूसरा अर्थ है जानो, समझो। यहाँ दूसरा अर्थ प्रयोग किया गया है। अर्जुन का प्रश्न भी बहुत सुन्दर है और श्रीभगवान् भी अति उत्साह से अर्जुन के समक्ष अपने रूप का वर्णन करने लगे।

11.6

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रान्, अश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि, पश्याश्चर्याणि भारत॥11.6॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! तू बारह आदित्योंको, आठ वसुओंको, ग्यारह रुद्रोंको (और) दो अश्विनीकुमारोंको तथा उनचास मरुद्गणोंको देख। जिनको तूने पहले कभी देखा नहीं, (ऐसे) बहुत-से आश्चर्यजनक रूपोंको (भी) (तू) देख।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "हे भारत! हे भरतवंशी अर्जुन! तुम सर्वप्रथम अदिति के बारह पुत्रों अर्थात बारह आदित्यों को देखो, तत्पश्चात ग्यारह रुद्रों (शङ्करजी के ग्यारह अवतार), आठ वसुओं (वसु का अर्थ ऊर्जा होता है। आठ वसु हैं जो सभी शापित थे। मृत्युलोक में गङ्गा मैया की कोख से जन्म लेने के उपरान्त गङ्गा मैया ने इन्हें मुक्ति दिलवा दी। जू अर्थात् देवव्रत अर्थात् भीष्म पितामह आठवें वसु हैं), दो अश्विनी कुमार, उन्चास मरुतगणों को देखो। इसके अतिरिक्त अनेक आश्चर्यजनक दृश्य, जो तुमने पहले कभी नहीं देखे थे, अब देखो।"

श्रीभगवान् ने अर्जुन का मार्गदर्शन भी किया कि पहले दिव्यात्मा देखो, तत्पश्चात् तुम नीचे के स्तर पर आओ।

11.7

इहैकस्थं(ञ्) जगत्कृत्स्नं(म्), पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश, यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥11.7॥

हे नींद को जीतनेवाले अर्जुन! मेरे इस शरीरके एक देशमें चराचर सहित सम्पूर्ण जगत्को अभी देख ले। इसके सिवाय (तू) और भी जो कुछ देखना चाहता है, (वह भी देख ले)।

विवेचन- श्रीमद्भगवद्गीता में श्री वेदव्यास जी ने अनेक स्थानों पर श्रीभगवान् और अर्जुन के लिए बहुत सुन्दर सम्बोधन प्रयोग किये हैं। श्रीभगवान् कहते हैं, "हे गुडाकेश! (गुडाकेश अर्थात् जिसका निद्रा पर नियन्त्रण है) अच्छी तरह से देखो। पलक मत झपकाओ। मेरी इस देह में एक ही स्थान पर सम्पूर्ण चर और अचर (जो चलायमान हैं, वह भी और जो अचलायमान हैं, वह भी, जो स्थावर हैं वह भी और जो जङ्गम हैं, वह भी) सारा जगत तुम देखो, और भी जो तुम्हें देखना है, वह भी देखो।"

दिखाने वाला दिखा रहा है परन्तु देखने वाला कुछ नहीं देख पा रहा है। अर्जुन स्तम्भित हैं और ऐसे स्तम्भित हैं कि उन्हें कुछ नहीं दिख रहा है। उनके ज्ञानचक्षु खुले नहीं है और चर्म चक्षुओं से विश्वरूप को देखना सम्भव नहीं है। हम विश्व को अपनी देह की बुद्धि से देखते हैं। "मैं और मेरा परिवार, मेरा समाज, मेरी जाति, मेरे सगे-सम्बन्धी, मेरा राष्ट्र।" यह "मैं और मेरा" से जब दृष्टि व्यापक होगी और "यह सारा विश्व तू और तेरा है और इसमें तुम हो," इस दृष्टि से देखने की क्षमता बढ़ेगी। अर्जुन देख नहीं पा रहे हैं। श्रीभगवान् कह रहे हैं, "देखो-देखो।"

नौवें अध्याय में श्रीभगवान् कहते हैं-

पश्य मे योगमैश्वरम्।

यहाँ श्रीभगवान् अपना योग-ऐश्वर्य दिखा रहे हैं। किस प्रकार सारा चराचर जगत परमात्मा में समाया है? कितनी विशेष बात है? जो विविधता हमें दिखाई देती है, वह अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देती, इसलिए आज सारा विश्व भारत की ओर बड़ी आस लगाए बैठा है, क्योंकि भारत में श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञान का प्रवाह है जो एकत्त्व की भावना देता है।

हर वेश में तू, हर देश में तू, तेरे नाम अनेक, तू एक ही है।

मराठी में एक बहुत सुन्दर कविता है-

सुमनात तू गगनात तू, तार्यां मध्ये वसतोस तू,

सद्धर्म जे जगतामधे, सार्यां मधे असतोस तू।

चोही कडे रूपे तुझी, जाणीव ही माझ्या मना।

तिमिरा तुनी तेजा कडे, प्रभु आमुच्या ने जीवना।

अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाइएगा। आप सभी जगह हैं, वह देखने की क्षमता बढ़ाइएगा। सङ्कुचितता ढलकर धीरे धीरे व्यापकता में परिवर्तित हो, ऐसी क्षमता दीजियेगा। श्रीमद्भगवद्गीता हमें वहाँ तक ले जाना चाहती है। श्रीभगवान् दिखा रहे हैं पर अर्जुन को कुछ दिख नहीं रहा है।

एक बार गाँव का एक व्यक्ति शहर में गया। वहाँ किसी ने बताया कि यहाँ पढ़ने का चश्मा मिलता है। उसने दुकान पर जाकर चश्मा माँगा। उसे चश्मा दिया गया और पढ़ने के लिए एक पर्चा भी दिया गया। उसने कहा कि मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। फिर पूछने पर उसने बताया कि दिखाई तो दे रहा है परन्तु उसे पढ़ना नहीं आता। वह कभी पाठशाला नहीं गया। जब पढ़ना ही नहीं आता तो चश्मा लेकर क्या लाभ होगा?

यही हाल अर्जुन का है। श्रीभगवान् को यह समझ आ गया कि अर्जुन यह चर्मचक्षु से नहीं देख पाएँगे। विश्वरूपदर्शन के लिए उन्हें दिव्य चक्षु देने होंगे।

11.8

न तु मां(म्) शक्यसे द्रष्टुम्, अनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं(न्) ददामि ते चक्षुः(फ्), पश्य मे योगमैश्वरम्॥11.8॥

परन्तु (तू) इस अपनी आँख (चर्मचक्षु) से मुझे देख ही नहीं सकता, (इसलिये मैं) तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ, (जिससे तू) मेरी ईश्वरीय सामर्थ्यको देख।

विवेचन- श्रीभगवान् ने कहा कि "अर्जुन! तुम भौतिक चक्षुओं से मेरे विश्वरूप को नहीं देख पाओगे, अतः मैं तुम्हें दिव्य-दृष्टि प्रदान करता हूँ। तदुपरान्त तुम सम्पूर्ण चराचर को मुझमें देख पाओगे।"

दृष्टि भी अलग-अलग होती है। श्रीमद्भगवद्गीता हमारी दृष्टि में परिवर्तन लाती है। हमारी दृष्टि की एक सीमा है। एक वैज्ञानिक दृष्टि होती है। वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी से परमाणु के अन्दर इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन देखते हैं। इलेक्ट्रॉन अपनी कक्षा में घूमते हैं। फिर इलेक्ट्रॉनिक्स पढ़ा जाता है। यह भी एक प्रकार की दिव्य दृष्टि है। यह सब हम अपने चर्मचक्षु से नहीं देख पाते हैं, इसलिए हमें ज्ञानचक्षु की आवश्यकता होती है। इन्हें प्रज्ञाचक्षु भी कहते हैं। हमारी उतनी क्षमता नहीं है कि हम श्रीभगवान् का दिव्यरूप देख सकें। हमारी उतनी पात्रता भी नहीं है, परन्तु श्रीभगवान् हमारी पात्रता कुछ तो बढ़ाते हैं, जिससे हमारा दृष्टिकोण बदलता है। उसे आगे तक ले जाने के लिए ही श्रीमद्भगवद्गीता है।

दिव्यता के भी भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। आँखों पर पट्टी लगाकर पढ़ना (mid brain activation) दिव्यता का एक स्तर है। गुलाबराव महाराज के चर्मचक्षु नहीं थे परन्तु वे अपने प्रज्ञाचक्षु से अन्धकार में भी देख सकते थे। जगद्गुरु के पास भी दृष्टि नहीं है, परन्तु उनके प्रज्ञाचक्षुओं से वे सारा जगत देख सकते हैं।

गुलाबराव महाराज जी के साथ उनके ताऊजी बहुत अन्याय करते थे। रात्रि के समय वन से होते हुए मार्ग से जाकर कुएँ से पानी लाने को कहते थे। उनके चक्षु न होने से वे कहीं भी गिर सकते थे, परन्तु वे कहते थे कि मेरे साथ प्रतिक्षण श्रीभगवान् रहते हैं। वे प्रतिदिन सुरक्षित वापस आ जाते थे। उनके लिखे हुए एक सौ बत्तीस ग्रन्थ हैं। गुरुदेव कहते हैं कि बड़े बड़े वैज्ञानिकों, दर्शन-शास्त्रियों को रहस्यों को सुलझाने के लिए सन्त श्री गुलाबराव महाराज के वाङ्ग्मय ग्रन्थों का आधार लेना पड़ेगा। इतने दिव्य ग्रन्थ उनके मुखारविन्द से प्रकट हुए हैं। यह कौनसी दिव्य दृष्टि है? यही दिव्य दृष्टि श्रीभगवान् अर्जुन को देते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, अर्जुन जो माँगते हैं, वह श्रीभगवान् उन्हें दे देते हैं। ऐसी क्या विशेषता है अर्जुन की? वे कहते हैं कि सब

कुछ छोड़कर पहले अर्जुन को समझना होगा। "मैं भी अर्जुन जैसा बन जाऊँ जिससे कि श्रीभगवान् की मुझ पर भी कृपा हो जाए।"

हा कोपे कीं निवांतु साहे । हा रुसे तरी बुझावीत जाये ।
नवल पिसें लागलें आहे । पार्थाचें देवा ॥

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि अर्जुन क्रोध करते हैं तो श्रीभगवान् सह लेते हैं, रूठते हैं तो मना लेते हैं। श्रीभगवान् अर्जुन के लिए पगला गए हैं। इतना तो किसी के लिए देखा ही नहीं।

मैया यशोदा ने मिट्टी खाने पर बालक रूप श्रीकृष्ण भगवान् पर क्रोध किया और मुँह खोल कर दिखाने को कहा। श्रीभगवान् ने मुँह खोला तो उसमें सारा विश्व दिखाई दिया। मैया भयभीत हो गई तो भगवान् ने मुँह बन्द कर लिया। जैसे ही श्रीभगवान् ने अर्जुन को दिव्य-दृष्टि प्रदान की, उनका विश्वरूप अर्जुन को दिखाई दिया।

ऐसी श्रीमुखौनि अक्षरें। निघती ना जंव एकसरें।
तंव अविद्येचे आंधारें। जावोंचि लागे॥

अविद्या का अन्धकार दूर होने लगा। ज्ञान रूपी प्रकाश अर्जुन के मन में उदित होने लगा।

11.9

सञ्जय उवाच
एवमुक्त्वा ततो राजन्, महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय, परमं(म्) रूपमैश्वरम्॥11.9॥

सञ्जय बोले - हे राजन्! ऐसा कहकर फिर महायोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुनको परम ऐश्वर विराट् रूप दिखाया।

विवेचन- सञ्जय धृतराष्ट्र को बताते हैं, "हे राजन! जिसमें सब जुड़े हैं ऐसे महा योगेश्वर हरि हैं।" हरि अर्थात् पापों का नाश करने वाले।" श्रीभगवान् ने पार्थ को अपना दिव्य रूप दिखाना आरम्भ कर दिया। विश्वरूप का दर्शन देखने वाला दर्शक, दिखाने वाला दृष्टा और दृश्य तीनों ही महान हैं।"

11.10, 11.11

अनेकवक्त्रनयनम्, अनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं (न्), दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥11.10॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं(न्), दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं(न्) देवम्, अनन्तं(म्) विश्वतोमुखम्॥11.11॥

जिसके अनेक मुख और नेत्र हैं, अनेक तरह के अद्भुत दर्शन हैं, अनेक अलौकिक आभूषण हैं, हाथों में उठाये हुए अनेक दिव्य आयुध हैं (तथा)-
जिनके गले में दिव्य मालाएँ हैं, जो अलौकिक वस्त्र पहने हुए हैं, जिनके ललाट तथा शरीर पर दिव्य चन्दन, कुंकुम आदि लगा हुआ है, ऐसे सम्पूर्ण आश्चर्यमय, अनन्त रूपोंवाले (तथा) सब तरफ मुखोंवाले देव (अपने दिव्य स्वरूप) को (भगवानने दिखाया)।

विवेचन- यहाँ सञ्जय वर्णन कर रहे हैं कि जिनके अनेक मुख, अनेक नयन हैं, मानो सभी भूतमात्र के नयन श्रीभगवान् के ही नयन हैं, उनके सारे मुख मानो श्रीभगवान् के ही मुख हैं। सञ्जय को उनके गुरु ने दिव्य दृष्टि प्रदान की है। वे महल में बैठ कर सारा वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि दिव्यरूपी श्रीभगवान् के शरीर पर अनेक आभूषण हैं और उनके अनेक हाथों में अनेक शस्त्र हैं। उन्होंने कण्ठ

में अनेक दिव्य मालाएँ धारण की हैं। उनके मुखारविन्द तथा शरीर पर दिव्य गन्ध का लेप लगा है। इस प्रकार उनके चारों ओर अनेक आश्चर्ययुक्त मुख हैं।

श्रीभगवान् का जो दिव्य रूप अर्जुन ने देखा, वह सञ्जय ने भी देखा तथा उसका सुन्दर वर्णन किया। इस दिव्य दर्शन से अभिभूत अर्जुन दोनों हाथ जोड़कर उस दिव्य रूप का जो वर्णन करते हैं, वह सब आगे के विवेचन में देखने का प्रयास करेंगे।

यह अद्‌भुत अध्याय हमें वास्तविकता को स्वीकार करने के लिए बाध्य करने वाला है। सम्पूर्ण विश्व को परमात्मा का रूप मान कर जीवन जीने के लिए पाथेय प्रदान करने वाला यह सुन्दर अध्याय पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से सुना, उसकी जो भी रसधारा बही, उस रस का रसास्वादन आपके साथ साझा करने का प्रयास किया जो उनके तथा ज्ञानेश्वर महाराज के चरणों में समर्पित है।

इसके साथ सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - श्रीमती माधुरी परिहार दीदी

प्रश्न - हम आयु में इतने बड़े हो जाते हैं, ज्ञान भी प्राप्त होता है फिर भी "मैं पन" या अहङ्कार बढ़ता ही रहता है। ऐसा क्यों होता है?

उत्तर - सभी में एक ही चैतन्य होता है, लेकिन सबकी क्षमता अलग-अलग होती है, किसी में कम तो किसी में ज्यादा। जैसे बिजली के दो बल्ब हैं, एक दो सौ वाट का और एक पचास वाट का। दोनों में विद्‌युत शक्ति समान रूप से प्रवाहित होती है किन्तु दो सौ वाट का बल्ब तेज प्रकाश देता है और पचास वाट का कम क्योंकि उनकी क्षमता अलग है।इसलिए हमें अपने आपकी तुलना किसी से नहीं करनी चाहिए जिससे न्यूनता की भावना जागृत हो सकती है।

"मैं" का भाव गलत नहीं है परन्तु उस मैं से काम करवाने वाले श्रीभगवान् हैं, यह हमें समझ लेना चाहिए। हमारी कर्मेन्द्रियों से होने वाले कर्मों के पीछे एक यन्त्रणा होती है इसलिए हमें उनका भार अपने पर नहीं लेना चाहिए क्योंकि हम अकेले कुछ नहीं कर सकते।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती माधुरी परिहार दीदी

प्रश्न - अर्जुन श्रीकृष्ण को इतने प्रिय क्यों थे?

उत्तर - अर्जुन में अनेक गुण थे। उनकी मातृभक्ति का प्रमाण उन्होंने अपनी नवविवाहिता पत्नी द्रौपदी को माता के कहने पर पाँचों भाइयों से साझा करके दिया। अर्जुन का अर्थ है नम्रता/ ऋजुता, वे नम्र थे और वीर भी। ये दोनों गुण एक व्यक्ति में एक साथ होना विशेषता है इसलिए वे श्रीकृष्ण को परम् प्रिय थे।

हम तो साधारण साधक हैं। हमें अपनी त्रुटियाँ दूर करने का प्रयास करना चाहिए। वैसे तो मनुष्य ताकत में अन्य पशुओं से कमजोर है लेकिन अपनी बुद्धि के कारण वह ताकतवर है। इस बुद्धि को भगवद्गीता के माध्यम से परिष्कृत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - श्री योगेश गोयल भैया

प्रश्न - ऐसी मान्यता है कि बेटे के विवाह के तुरन्त बाद गङ्गा स्नान नहीं करना चाहिए। क्या यह सच है? क्या महाकुम्भ जाना गलत होगा?

उत्तर - हमें ऐसी नकारात्मक बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। कहते हैं कि "**मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा**", और गङ्गा मैया के पास जाना तो एक पवित्र कार्य है। शास्त्रों को देखना चाहिए लेकिन उनपर अन्धविश्वास नहीं करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - श्री के·आर·एम·राव भैया

प्रश्न - हमारे पास तो अर्जुन जैसे दिव्य चक्षु नहीं हैं, तो हम श्रीभगवान के दिव्य रूप की कल्पना कैसे करें?

उत्तर - हमारे ज्ञान चक्षुओं से हमें विद्वानों द्वारा कही गई बातों को मानना चाहिए, जैसे हम मानते हैं कि एक तत्त्व का सूक्ष्म रूप परमाणु है जिसमें प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रॉन होते हैं, हालाँकि वे हमें दिखते नहीं हैं पर हम मानते हैं।

लेकिन आजकल दूरदर्शन, मोबाइल फोन इन सब के माध्यम से हम दूर रहने वाले सम्बन्धियों और मित्रों को देख सकते हैं और बात भी कर सकते हैं, योगेश्वर ने मनुष्य के हाथों यह योग करवाया है तो हम इन उपकरणों को दिव्य चक्षु की उपमा दे सकते हैं। हमारा दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती सङ्गीता बर्नवाल दीदी

प्रश्न - अर्जुन विद्वान थे और उनको भी इतना समझाना पड़ा, सामान्य मनुष्य अमङ्गल में मङ्गल कैसे देख पाएँगे?

उत्तर - इसके लिए मन को निर्मल करना होगा। जिसके लिए निर्मल मन के व्यक्ति से जुड़ना होगा। श्रीभगवान् गीता जी में बसे हैं और गीता जी से जुड़कर हमारे विकार दूर हो सकते हैं। हमारा मन कीचड़ भरा तालाब है जिसे साफ़ करने में समय तो लगेगा ही और सामाजिक मीडिया के माध्यम से हम मन में और कीचड़ भरकर उसे मैला कर रहे हैं। किसी में कोई भी विशेषता है तो वह परमात्मा की है यह दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, सन्त महात्माओं की जीवनी से सीखना चाहिए कि किसी के व्यवहार से हमारा मन मैला न हो।

प्रश्नकर्ता - श्री त्रैलोक्य भैया

प्रश्न - विश्वरूप दर्शन के बाद भी अर्जुन के मन में शङ्का क्यों रही, जिसके कारण श्रीभगवान् को भक्ति, ज्ञान आदि के बारे में बताना पड़ा?

उत्तर - अर्जुन ने श्रीभगवान् का विराट रूप देखा, वह रूप भयङ्कर और वीभत्स भी था, जिससे अर्जुन प्रेम नहीं कर पा रहे थे। अर्जुन हमारे प्रतिनिधि हैं। सामान्य मनुष्य को ईश्वर के सगुण और साकार रूप से ही प्रेम हो सकता है, अतः श्रीभगवान् बारहवें अध्याय में भक्तियोग द्वारा सगुण, साकार का वर्णन करते हैं, फिर तेरहवें अध्याय में क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग में निर्गुण निराकार का, चौदहवें अध्याय में त्रिगुणात्मक प्रकृति का वर्णन करते हुए अर्जुन के मन में भक्ति का भाव उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अन्तिम अट्ठारहवें अध्याय में अर्जुन का मोह पूरी तरह से नष्ट हो जाता है।

प्रश्नकर्ता - श्री रामशङ्कर मेहता भैया

प्रश्न - प्रारब्ध के अनुसार पाप और पुण्य के आधार पर पुनर्जन्म होता है, यदि किसी की मृत्यु कम आयु में होती है तो उसके पाप और पुण्य कम होंगे?और यदि लम्बी आयु के बाद मृत्यु हो तो ज्यादा?

उत्तर - नहीं, इस दृष्टि से कदापि नहीं देखना चाहिए। दुर्घटना, रोग या अन्य किसी भी कारण से जो देह जल्दी छोड़कर चले जाते हैं और उनके जो कर्म हैं उनके फल भोगने के लिए उनका पुनर्जन्म होता है।

ऐसा कहा जाता है कि ज्यादा दिन बीमार व्यक्ति को इसी जन्म में अपने कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं, लेकिन सृष्टिकर्ता के न्याय को हम नहीं समझ सकते, हाँ, उससे सम्बन्ध अवश्य जोड़ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती जयश्री दीदी

प्रश्न - आँख, नाक, कान, जिह्वा तथा त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ कौन सी हैं? उनके द्वारा हम ईश्वर को कैसे अर्पण कर

सकते हैं?

उत्तर - हाथ, पैर, दो विसर्जन अवयव और जिह्वा ये पाँचों कर्मेन्द्रियाँ हैं। जिह्वा ज्ञानेन्द्रिय है और कर्मेन्द्रिय भी, इन्हें हम हार्डवेयर कह सकते हैं और मन और बुद्धि को सॉफ्टवेयर, इनसे हमें कर्म करने की क्षमता मिलती है। इस क्षमता के लिए धन्यवाद हमारे कर्मों को सृष्टिकर्ता को अर्पित कर के दिया जा सकता है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||